गिद्ध

विजय तेंडुलकर

गिद्ध

गिद्ध

विजय तेंडुलकर

अनुवाद

वसन्त देव

वाणी प्रकाशन

वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002
शाखा
अशोक राजपथ, पटना 800 004
फ़ोन : +91 11 23273167 फ़ैक्स : +91 11 23275710
www.vaniprakashan.in
vaniprakashan@gmail.com
sales@vaniprakashan.in

GIDDH
by Vijay Tendulkar
Translated by Vasant Dev

ISBN : 978-93-87409-20-0
Play

© 2018 तनुजा मोहिते

प्रथम (वाणी) संस्करण

मूल्य : ₹ 250

इस पुस्तक के किसी भी अंश को किसी भी माध्यम में प्रयोग करने के लिए प्रकाशक से लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।

सिटी प्रेस, दिल्ली-110 095 में मुद्रित

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

गिद्ध का झपट्टा

गिद्ध ऐसे अभिशप्त इनसानों की कहानी है जो अपनी गिद्ध मनोवृत्ति में आपाद्-मस्तक लिप्त हैं। या यों समझिए इनसानी लिबास पहने वे सब के सब शापभ्रष्ट गिद्ध हैं।

गिद्ध-दृष्टि तो मरे हुए, चुके हुए शवों पर होती है, पर ये इनसानी गिद्ध जीवितों पर अपनी लोलुप दृष्टि लगाये इस क़दर अभिशापित हैं कि तमाम मानवीय संवेदनाएँ और रिश्ते उनके लिए शव बन चुके हैं और उनका झपट्टा एक-दूसरे पर जारी है।

छल-कपट और अमानवीय दाँव-पेंचों में उसके परिवार के लोग आज की इस उपभोक्ता संस्कृति में असहज और असामान्य नहीं लगते।

विजय तेंडुलकर मनुष्य और समाज की इन खाजों को जितनी तीव्रता से अनुभव करते हैं उतनी ही सहजता से उसे उकेरते भी हैं। ऐसे चरित्र भले ही क्षण- भर को असहज और असामान्य लगें, पर ये हमारे आस-पास विद्यमान हैं और मंच पर वे खुलकर सामने प्रगट हो जाते हैं।

पात्र-परिचय

पपा : वृद्ध पिता
रमाकान्त : पपा का बड़ा लड़का
उमाकान्त : पपा का छोटा लड़का
माणिक : पपा की कुँवारी बेटी
रमा : रमाकान्त की पत्नी
रजनीनाथ : पपा का अनौरस बेटा
रमाकान्त उमाकान्त का सौतेला भाई

पहला अंक

पहला दृश्य

समय : रात्रि। कालरात्रि जैसी।

[परदा उठते ही गैरेज का और एक तुलसीघरे का हिस्सा दिखाई पड़ता है। तुलसी का पौधा काफी हरा-भरा। ड्रॉइंगरूम और बेडरूम का रंग मटमैला, कालौंच की तरफ झुका हुआ।

पिछले पैसेज में उजाला। रजनीनाथ का टेबललैम्प जल रहा है।

रमाकान्त सामान बटोर रहा है; ड्रॉइंगरूम में एक ओर पत्थर की प्रतिमा बनी राम खड़ी है। रमाकान्त का सामान बटोरना समाप्त होता है। चारों ओर देखकर वह बैग उठाता है। रमा का हाथ पकड़कर रमाकान्त सहारा देता है। रमा एकदम जड़। सबसे आगे रमाकान्त उसके पीछे रमा—दोनों बाहर आते हैं। रमाकान्त कोट का कॉलर मोड़ता है। ताला बन्द करता है। दोनों जाते हैं। जाते-जाते रमा गैरेज के दरवाज़े के पास ठिठकती है। रमाकान्त उसे आगे ले जाता है।

दोनों पैसेज में होकर जाते हैं। तूफानी हवा। लगातार। दोनों के अदृश्य होते ही गिद्धों का कुछ पलों तक कर्णकटु चीत्कार। उसके बाद पैसेज अँधेरे में डूब जाता है।

गैरेज में उजाला। रजनीनाथ लिखने में मग्न है। चौंककर दरवाज़े की ओर देखता है। 'रमा!' पुकारकर

दरवाज़े की दिशा में लपकता है। टीन का दरवाज़ा खुलने की आवाज़। हवा की सनसनाहट जारी है। टीन का दरवाज़ा ज़ोर से बन्द होने की आवाज़। उसके बाद सन्नाटा

रजनीनाथ पहले वाले स्थान पर जाकर लिखना शुरू कर देता है।]

रजनीनाथ : आखिर रमा चली गयी। ठूँठ भावों की एक कठपुतली ...सचेतन...मुरदार मालकिन का पीछा करती हुई... बधियाए जानवर के दुचले ईमान को उठाये...एक सड़ियल कोढ़ी को खजैले कुत्ते का स्वामिनिष्ठ सहारा, नरक की राह पर। खो चुका है दोनों का भविष्य...शेष है, उस जगह एक मौत...नाक झड़ जाने के बाद बच गया हो एक छेद जैसे...मौत भी दुःसाध्य है, दुराराध्य है। समय बीत जाता है और महाकाल नहीं आता, खींचा-तानी ख़त्म नहीं होती, जीनेवाले से बदतर हालत देखने वाले की...वह भी नहीं बदलती! उसके बाद? आँख ओट, पहाड़ ओट! दिमाग के नरक की खातिर अन्त में अज्ञात की ओट! लेनी है मुक्ति की साँस...मुक्ति ही तो; मुक्ति भी कैसी? ...बाईस साल तक एक नपुंसक जीवन जी चुकने के बाद...एक लम्बे सपाट, घिनौने, महाभयानक दिवास्वप्न के बाद...जो अब कहीं समाप्त होने को है...

जगते हैं यादों के कंकाल, कर उठते हैं अट्टहास सपनों के कपाल...महाशून्य से निगली गयी चीखें, फूत्कार, कराहें, सिसकियाँ...जी उठती हैं सब, जैसे शापमुक्त होकर, और देखते-देखते...नहीं! नहीं देखूँगा वह सब दुबारा! नहीं!...*(फिर भी आकृष्ट होकर)* हिरनी जैसी अबोध...धरती जैसी स्नेहमयी...असाढ़ की पहली फुहार जैसी...निर्मल, शर्मीली, लजीली...एक पल खिलखिलाती, दूसरे पल खलभलाती...और...और पल भर में आँसुओं के अथाह सागर में डूबती उतराती...भावुक, नाजुक... मोह जगाती एक प्रतिमा...जैसे फूल हो हरसिंगार का

या सपना भोर का...जो कभी ख़तम ही न हो...बाईस साल...बाईस ही न? बहुत साल बीत गये...ऐसी थी रमा...रमा भाभी...शादी के मौके पर...सुपारी वाले खेल में...हमारे भाई साहब ने सुपारी छिपाई थी, ऐसी जगह कि पता न चले; और आखिरकार जानकर भी ढूँढ़ने, निकाल पाने की असमर्थता से संकोच-भरी, घबराई मुखमुद्रा उसकी...घिर आयी थीं बरसाती घटाएँ...बह उठी थीं सहस्त्र धाराएँ आँखों की राह से...अबाध...हल्दी-पुते गालों के ढलान से, नीचे...मुँह छिपाकर हथेलियों में फूट-फूटकर रोती उस सयानी लड़की की वह हालत देखकर हँस पड़ा था मैं निर्लज्ज हँसी...बच्चा ही तो था...जैसे सुखद गुदगुदी कर रहा हो कोई...

(निग्रहपूर्वक) जाओ, जाओ भाई, लौट जाओ अपनी कब्रों में...लेट जाओ अपने-अपने गड्ढों में...आज तो इस अभागे को जीने दो ज़रा-सा स्मृतिभ्रंश...विस्मरण का सुख भोगने दो...स्मरण के लाखों-करोड़ों मरण मर चुकने के बाद ही सही...एक बार...एक ही बार!

वह आयी थी...दहलीज पर रखे बर्तन के चावलों को दाहिने पाँव के अँगूठे से बिखराकर...अपने नये घर में पहली बार...क्या करनी हैं वे यादें, निर्दय चुड़ैलें, क्या होना है उनका?

नया घर...घर था वह? आदमीनुमा गिद्धों की बस्ती थी वह...ज़िन्दा भूतप्रेतों का अखाड़ा...घर भी कैसा है? ...वक़्त पर भोजन न मिलने से झुलसती आँतों पड़ा था मैं तकिए में मुँह छिपाए, खौल रहा गुस्से में...कत्ल कर दूँगा सब का...टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा एक-एक के...गला काट दूँगा बकरे की तरह...वह आयी थी...मेरे माथे को छुआ था...काँपती, फिर भी ममता चुआती उँगलियों से छुआ था...चौंककर उठ बैठा मैं...जैसे अंगार रख दिया गया हो...सहमकर हट गयी थी, सिर नीचा किये, अँगूठे से ज़मीन कुरेदते हुए कहा था उसने : ‘खाना लाई हूँ...तुम्हारे लिए...सबसे छिपाकर...खाओ न! ...किसी से

कहना मत...नहीं तो...सौगन्ध दिलाई थी उसने...अपनी ...आग्रहपूर्वक...और मैं उस सौगन्ध में बँध गया, चुप रहा...कभी न बोला...होंठ सीकर देखा किया...असहनीय था देखना, फिर भी निःशब्द देखा किया...स्वप्न तक में चुप रहा....उस पर नित्य होने वाले अत्याचार, उपेक्षा, उसका तड़पना, तिलमिलाना, सिसकना—सब देखता रहा मुर्दा आँखों...कायर बनकर, पत्थर की तरह, एक कीड़े की तरह...देखा किया बाईस साल...जबकि उसकी एक-एक आशा, एक-एक अपेक्षा, जहाँ-की-तहाँ, राख की ढेरी में बदलती गयी...एक थी उसकी वांछा, सिर्फ़ एक बाकी थी, जिसे वह प्राणपण से छाती से चिपटाये हुए थी...देह और मन के कण-कण की शक्ति को बटोरकर थामे हुए थी ...प्रसंगवश बन्धनों को तोड़कर भी...फलने की वांछा ...माँ की कोख रखने वाली मादा का हक...जन्मसिद्ध...जो एक कुत्ती तक को हासिल होता है। मगर उस प्यासी बेल पर न फूल खिला न फल जमा...एक दानवी लहर आयी, आसमान का पता पूछती हुई, और चलती बनी अन्तिम सुकुमार अंकुर को उखाड़कर...बाकी बचा मुरझाए फूलों का मसला हुआ इत्ता-सा लौंदा...और बर्फ जैसे जमे हुए आँसुओं की निपट पागल चट्टान, संवेदनशून्य, विकारशून्य ...बाकी बचे सड़ी आशा की झूलती शाखा पर पंजा जमाए पाँच गिद्ध...पाँच गिद्ध...सड़ी आशा की झूलती...शाखा पर...

[प्रकाश समाप्त। अब प्रकाश पिछले पैसेज में। वहाँ दिखायी पड़ते हैं पपा, खाली मुँह चलाते हुए। रमा, जो आँखें मींचती-खोलती सिर्फ खड़ी है। रमाकान्त, उमाकान्त। दाँत और कान का मैल निकालते हुए, यहाँ-वहाँ देखते हुए। माणिक सिर खुजाती हुई हँसती है।

आवाज़ किसी की नहीं सुनाई पड़ती। सिर्फ गिद्धों का कर्णकटु चीत्कार।]

[अन्धकार।]

दूसरा दृश्य

[उजाला होते ही दिखाई पड़ता है, एक कोटरनुमा बँगला। सामने वाला दृश्य तीन भागों में बँटा हुआ है। मुख्य है पुराने गाँठदार फर्नीचर से युक्त दीवानखाना। टेलीफ़ोन। दाहिनी ओर वाले हिस्से में तुलसीघरा, मय तुलसी के शक्तिहीन पौधे के। ज़रा बायीं ओर काठ का एक पुराना बड़ा-सा पलँग जो बेडरूम की सूचना देता है। तमाम मंच पर धुएँ की हल्की-सी परत जो समूचे वातावरण को बोझिल बना रही है। दूर कोयल बड़ी तमन्ना से कूक रही है; मगर जल्दी ही ऐसे बन्द हो जाती है जैसे किसी ने उसकी गर्दन मरोड़ दी हो। फिर सुनाई पड़ती है लगातार बढ़ती जाती लड़ाई-झगड़े की आवाज़; पुरुष की आवाज़। मगर शब्द साफ़-साफ़ समझ में नहीं आते।

रमा पूजा की थाली लिए आती है और तुलसी के पास जाती है। रमा युवती है, दुबली-पतली, फिर भी पर्याप्त अच्छी-भली दिखती है। उसके व्यक्तित्व में हिरनी की निष्पाप भावना ज़ाहिर होकर रहती है। भक्तिभाव से पूजा करती है और आँखें मींचकर नमस्कार करती है कि इतने में बँगले के बाहर ज़ोर का कोलाहल।]

‘निकल-स्साला हरामी! निकल बाहर! स्साले सुबह-सुबह पैसे माँगने चले आते हैं! रक्खे हैं तेरे

बाप ने! निकल जा नहीं तो शूट कर दूँगा!'

[रमा किंचित् विचलित होकर उस ओर देखती है जिधर से आवाज़ आ रही है। दूसरे पुरुष की आवाज़ जिसमें ज़रा जनानापन है।]

'अबे देखता क्या है उमा! लगा स्साले के चूतड़ों पर! नौकर स्साला; मिज़ाज देखो इनके! मार स्साले को!'

[चीख-पुकार, मार-पीट। ये आवाज़ें ज़रा दूर चली जाती हैं। रमा का चित्त अब पूजा में नहीं लगता। वह जल्दी-जल्दी पूजा समाप्त करती है और थाली लिए सीढ़ियाँ चढ़कर दीवानखाने की तरफ आती है। इतने में बँगले के ज़ीने की ओर से जल्दी-जल्दी आती है माणिक : उम्र तीस-पैंतीस साल। उसकी काठी मुरझाई-सी है। ताज़गी खोया ज़रा थुलथुल शरीर। देर से सोकर उठने के कारण आँखें बोझिल। बालों में कर्लर्स लगाये हुए। उठकर सीधे चली आयी है, इसीलिए कपड़े बिखरे हुए। बरताव, बोलचाल में ज़रा 'हिस्टीरिक'। सिगरेट पी रही है। हाथ में पहनने के कपड़े जिन्हें वह सोफा पर पटक देती है। गोलियों की शीशी टीपॉय पर रखती है, सिगरेट एश-ट्रे में।]

माणिक : *(सामने रमा को देखकर)* खड़ी हैं लाटनी की तरह! हमको मालूम था कि आप यही करेंगी। कल कित्ती बार जताया था कि मुझे सुबह सात बजे जगा देना! तुम लोगों से किसी की भलाई देखी जाय तब न! *(कर्लर्स उतारती जाती है।)*

रमा : मैंने कई बार आवाज़ दी थी। आपके कमरे का दरवाज़ा बन्द था...

माणिक : तो क्या दरवाज़ा खुला छोड़ दूँ कि चले आओ और मेरा गला घोंट दो! खुद अपना खयाल रखती हूँ इसलिए ज़िन्दा हूँ अब तक इस घर में! क्या कोई इनसान बसते हैं यहाँ? *(चिढ़ाकर)* दरवाज़ा बन्द था! *(साइडबोर्ड के*

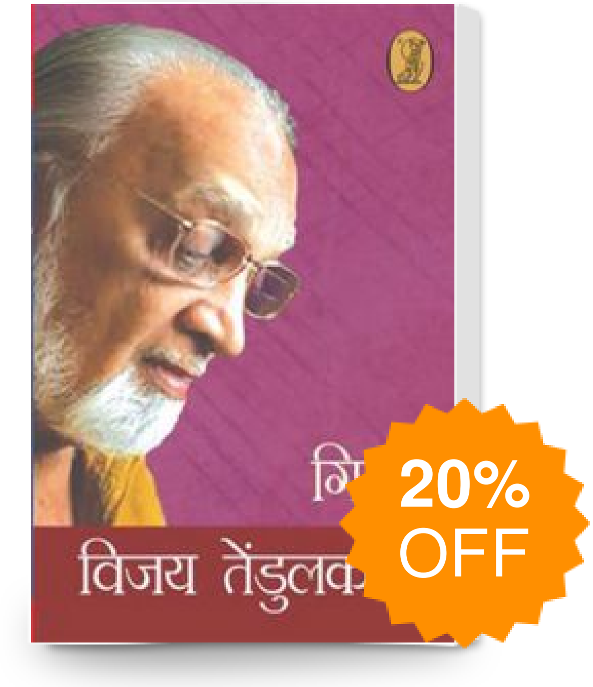

Publisher : Vani Prakashan ISBN : 9789387409200 Author : Vijay Tendulkar, Vasant Dev

Type the URL : http://www.kopykitab.com/product/22636

Get this eBook